आर. एन. मित्तल से पहले जे.

मिथन लाल, - *याचिकाकर्ता*

बनाम

गंगा देवी ट्रस्ट, - *उत्तरदाता।*

सिविल संशोधन सं. 1977 *का* 1501

22 अगस्त, 1978।

सिविल प्रक्रिया संहिता (1908 का वी) जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता *(संशोधन) अधिनियम (1976* का *104)* द्वारा संशोधित किया गया है - धारा *47, 99 ए, 115* और आदेश *41* नियम *35 - निष्कासन के लिए मुकदमा डिक्री - डिक्री* जे *जिसमें निष्कासन के लिए विशिष्ट निर्देश नहीं हैं - ऐसी डिक्री -* चाहे निष्पादन योग्य हो - डिक्री *में राहत निर्दिष्ट करने के लिए चूक - क्या अनियमितता - धारा 47 के तहत आपत्तियां खारिज - उच्च न्यायालय - क्या संशोधन में हस्तक्षेप करना चाहिए।*

यह माना गया कि जहां अपीलीय न्यायालय निष्कासन के लिए मुकदमा दायर करता है, लेकिन एक निरीक्षण द्वारा यह विवाद में संपत्ति से निष्कासन का आदेश पारित नहीं करता है और डिक्री निर्णय के अनुसार तैयार की जाती है, जिसमें निष्कासन के लिए कोई विशिष्ट निर्देश नहीं होता है, यह केवल एक अनियमितता है जो डिक्री को दूषित नहीं करती है। यदि निर्णय वाद पत्र के साथ पढ़ा जाता है, तो एकमात्र निष्कर्ष यह है कि न्यायालय ने विवाद में निर्णय-देनदार को परिसर से बाहर निकालने का आदेश दिया। यह सच है कि न्यायालय के लिए उचित रास्ता नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 नियम 35 के अनुरूप एक डिक्री पारित करना था, लेकिन यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है, तो उच्च न्यायालय संहिता की धारा 47 के तहत एक आदेश के खिलाफ संशोधन में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संहिता में धारा 99क जोड़ी गई है जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि ऐसे आदेश से संबंधित किसी कार्यवाही में किसी त्रुटि, दोष या अनियमितता के कारण धारा 47 के अंतर्गत किसी भी आदेश को तब तक पलटा या काफी हद तक बदला नहीं जाएगा जब तक कि ऐसी त्रुटि, दोष या अनियमितता ने मामले के निर्णय को प्रतिकूल रूप से प्रभावित न किया हो। धारा 115 जो संशोधनों से संबंधित है, को भी उक्त संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित

किया गया है और उक्त धारा की उपधारा (1) में एक परंतुक जोड़ा गया है। परंतुक में यह कहा गया है कि उच्च न्यायालय धारा 115 के तहत, वाद या अन्य कार्यवाही के दौरान किए गए किसी भी आदेश या किसी मुद्दे पर निर्णय लेने वाले किसी भी आदेश को बदल या उलट नहीं देगा, सिवाय इसके कि यदि आदेश को टिकने की अनुमति दी जाती है, तो न्याय की विफलता होगी या उस पक्ष को अपूरणीय क्षति होगी जिसके खिलाफ यह किया गया था। उपर्युक्त धारा को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि जब तक आदेश न्याय की विफलता का कारण नहीं बनता है या अपूरणीय क्षति का कारण नहीं बनता है, तब तक इसे उच्च न्यायालय द्वारा परेशान नहीं किया जा सकता है।

(पैरा 4)

सी.पी.सी. की धारा 115 के तहत याचिका *श्री डीडी यादव, उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, अंबाला कैंट के दिनांक* 21 *सितम्बर,* 1977 के आदेश में *आपत्तियों/निर्णय देनदारों द्वारा दायर आपत्तियों को खारिज करने के आदेश में संशोधन किया गया।*

याचिकाकर्ता की ओर से वकील वीके वशिष्ठ *ने पैरवी की।*

प्रतिवादी की ओर से *एम. सिंह लिब्रहन, एडवोकेट।*

निर्णय

आर। एन मित्तल, जे। (मौखिक)

(एक) यह आदेश 1977 के सिविल रिवीजन नंबर 1501, 1521, 1525, 1537 और 1550 का निपटारा करेगा, जिसमें कानून के समान प्रश्न हैं। फैसले में तथ्य 1977 के सिविल रिवीजन नंबर 1501 से दिए जा रहे हैं।

(दो) श्रीमती गंगा देवी ट्रस्ट (जिसे बाद में ट्रस्ट के रूप में संदर्भित किया गया) ने अंबाला कैंट में स्थित विवादित परिसर से ' महान लाई को बाहर निकालने के लिए एक मुकदमा दायर किया, जिसे ट्रायल कोर्ट ने खारिज कर दिया। ट्रस्ट द्वारा अंबाला के वरिष्ठ अधीनस्थ न्यायाधीश के पास अपील की गई, जिन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। मिठन लाई इस न्यायालय में दूसरी अपील में आए थे जिसे वापस लिए जाने के रूप में खारिज कर दिया गया था। इसके बाद ट्रस्ट ने प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित डिक्री का निष्पादन शुरू किया, जिसमें उनके द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर आपत्तियां उठाई गई थीं कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विशिष्ट शर्तों में डिक्री पारित नहीं की थी और परिणामस्वरूप यह निष्पादन योग्य नहीं था। कार्यकारी सीबीएर्ट ने उसके खिलाफ निर्णय-देनदार द्वारा उठाई गई आपत्तियों का फैसला किया। वह इस न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका में आया था। प्रारंभिक सुनवाई के समय, विद्वान एकल न्यायाधीश ने इसे केवल एक आधार पर स्वीकार किया। प्रवेश आदेश निम्नानुसार है:-

> "केवल इस आधार पर स्वीकार किया गया कि जिस डिक्री को निष्पादित करने की मांग की गई थी, वह निष्कासन का निर्देश नहीं देता है।

नवंबर, 1977 में एक वास्तविक तारीख पर नंबर 1 पर सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया जाएगा। पुनरीक्षण के लिए इस याचिका पर फैसला आने तक फांसी पर रोक लगाई जाए।

(तीन) याचिकाकर्ता के वकील द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपील को स्वीकार करते समय, निष्कासन के लिए एक विशिष्ट आदेश पारित नहीं किया। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि यदि ऐसा था, तो डिक्री को तब तक निष्पादित नहीं किया जा सकता है जब तक कि इसे सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 35 के अनुसार संशोधित और तैयार नहीं किया जाता है। दूसरी ओर, प्रतिवादी के विद्वान वकील ने जोरदार रूप से प्रस्तुत किया है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय का आदेश एक अनियमितता के समान है और यदि निष्पादन न्यायालय ने यह नहीं माना कि आदेश में संशोधन की आवश्यकता है, तो यह न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 99 और 115 (2) के मद्देनजर निष्पादन न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

(चार) मैंने पक्षकारों के विद्वान वकीलों को काफी विस्तार से सुना है और प्रतिवादी के विद्वान वकील की दलील ोें को बल मिला है। यह विवादित नहीं है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने ट्रायल कोर्ट के डिक्री को रद्द कर दिया, लेकिन आगे आदेश पारित नहीं किया कि याचिकाकर्ता को विवाद में संपत्ति से निकाल दिया जाएगा। आदेश 41, नियम 35 में कहा गया है कि डिक्री में अन्य *बातों के साथ-साथ* दी गई राहत या किए गए अन्य अधिनिर्णयन का स्पष्ट विनिर्देश होगा। डिक्री निर्णय के अनुसार तैयार की गई थी और याचिकाकर्ता को बाहर निकालने के लिए डिक्री में कोई विशिष्ट निर्देश नहीं था। यह सच है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय के लिए उचित रास्ता आदेश 41, नियम 35 के अनुरूप डिक्री पारित करना था, लेकिन यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है, तो यह न्यायालय संहिता की धारा 47 के तहत एक आदेश के खिलाफ संशोधन में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता में धारा 99-क जोड़ी गई है, जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि ऐसे आदेश से संबंधित किसी भी कार्यवाही में किसी त्रुटि, दोष या अनियमितता के कारण धारा 47 के तहत कोई भी आदेश

उलट या काफी हद तक भिन्न नहीं होगा, जब तक कि ऐसी त्रुटि, दोष या अनियमितता ने मामले के निर्णय को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं किया हो। धारा 115, जो संशोधनों से संबंधित है, को भी उक्त संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित किया गया है और उक्त धारा की उप-धारा (1) में एक परंतुक जोड़ा गया है। परंतुक में यह कहा गया है कि उच्च न्यायालय, धारा 115 के तहत, वाद या अन्य कार्यवाही के दौरान किए गए किसी भी आदेश, या किसी मुद्दे पर निर्णय लेने वाले किसी भी आदेश को बदल या उलट नहीं करेगा, सिवाय इसके कि यदि आदेश को टिकने की अनुमति दी जाती है, तो न्याय की विफलता होगी या उस पक्ष को अपूरणीय क्षति होगी जिसके खिलाफ यह किया गया था। उपर्युक्त धारा को पढ़ने से, यह स्पष्ट है कि जब तक आदेश ने न्याय की विफलता का अवसर नहीं दिया या अपूरणीय क्षति नहीं पहुंचाई, तब तक इसे इस न्यायालय द्वारा परेशान नहीं किया जा सकता है। वर्तमान मामले में, यह विवादित नहीं है कि मुकदमा याचिकाकर्ता को बाहर निकालने के लिए था और इसे प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा डिक्री किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है, एक निरीक्षण के माध्यम से निष्कासन का आदेश विशेष रूप से पारित नहीं किया गया था। नतीजतन इसे डिक्री में भी शामिल नहीं किया गया था। यह केवल एक अनियमितता है जो डिक्री को दूषित नहीं करती है। यदि फैसले को वाद-पत्र के साथ पढ़ा जाता है, तो एकमात्र निष्कर्ष यह है कि अपीलीय अदालत ने याचिकाकर्ता को विवाद में परिसर से बाहर निकालने का आदेश दिया। अपीलीय न्यायालय के पास इस स्तर पर डिक्री में संशोधन करने की शक्ति भी है। याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्ति तकनीकी प्रकृति की है और ^ निष्पादन न्यायालय के आदेश को उलटने की स्थिति में उसे कोई अपूरणीय क्षति नहीं होगी। धारा 99-ए इस तरह के फैसले को परेशान करने के लिए इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को भी रोकती है क्योंकि यह याचिकाकर्ता के अधिकार को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं करता है।

- / • 'मैं,

(पाँच) उपरोक्त कारणों से, मुझे पुनरीक्षण याचिकाओं में कोई दम नहीं दिखता है और लागत के बारे में बिना किसी आदेश के इसे खारिज कर देता हूं।

' (-w) "II II I" ' मैं

एन. के. एस.

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय केवल वादकर्ता के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह इसे अपनी भाषा में समझ सके और इसका उपयोग किसी अन्य उद्देश्य के लिए नहीं किया जा सकता है। निर्णय का अंग्रेजी संस्करण सभी न्यायिक और प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए मान्य होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

हिमानी सागर

प्रशिक्षित न्याय अधिकारी, हरियाणा